संगीत के शिखर पर – पं. ओमप्रकाश शर्मा

पं. ओमप्रकाश शर्मा, उज्जैन और मालवा अंचल की समृद्ध, सुदीर्घ संगीत परम्परा के समर्थ प्रतिनिधि हैं। जीवन के आठ दशक पार कर आने पर भी वे संगीत साधना में संलग्न हैं। संगीत और संस्कृति के क्षेत्र में उनका योगदान बहुआयामी है। पं. ओमप्रकाश शर्मा की सांगीतिक साधना को जानने से पहले, उज्जैन की उस चिरन्तन संगीत परम्परा का सिंहावलोकन जरूरी है, जिसका वर्तमान युग में प्रतिनिधित्व कर रहे हैं, पं. ओमप्रकाश शर्मा।

भारतीय संगीत परम्परा के दो स्वरूप प्रवाहमान रहे हैं, एक भगवान शिव से सम्बद्ध है, और दूसरा श्रीकृष्ण से। उज्जैन, महाकाल शिव का नगर है और भगवान श्रीकृष्ण ने द्वापर युग में यहाँ महर्षि सान्दीपनि के आश्रम में शिक्षार्जन किया था। इस नगर में भारतीय संगीत परम्परा के दोनों स्वरूप विद्यमान रहे हैं। द्वापर युग में कान्हा की मुरली की तान यहाँ गूँजी होगी। प्राचीन संस्कृत साहित्य में उज्जैन की समुन्नत संगीत परम्परा के अनेक उल्लेख मिलते हैं। वीणा की झंकार के साथ महाश्वेतादेवी की स्वरलहरी का आकर्षण, महाकवि बाणभट्ट की प्रेरणा का स्रोत बन गया था। उज्जैन के सम्राट् प्रद्योत की कलानिपुणा राजकुमारी वासवदत्ता का वीणावादन सीखते हुए ही कोशाम्बी के युवराज उदयन से प्रणय हुआ था। घोषवती वीणा के वादन से नीलगिरि जैसे गजेन्द्र को वश में कर उदयन, वासवदत्ता कोशाम्बी की राह चले गए थे। वसन्तसेना की संगीत साधना और स्वरसंधान से सुवासित रहा है, उज्जैन का आसमान। राजा विक्रम के दीपक राग की गूँज लोककथाओं में दो हजार साल से लगातार बनी हुई है। महाकवि कालिदास ने नृत्य–संगीत से सज्जित महाकालेश्वर की सान्ध्य आरती का वर्णन 'मेघदूत' में किया है। प्राचीन मालवराग की भी बड़ी प्रतिष्ठा रही है। समय के बदलाव के बावजूद उज्जैन में संगीत का प्रवाह सतत बना रहा। आधुनिक समय में उज्जैन के संगीतज्ञों में तातू भैया ध्रुपदिये 1857–1917 विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्हें सैकड़ों ध्रुपद कण्ठस्थ थे। केशवराव आप्टे,

उज्जैन आर केशवराव आप्टे, इन्दौर के साथ ही भैया बुवा हरदास, तातूभैया के प्रमुख शिष्य थे, जिन्होंने बड़ा नाम कमाया था। ध्रुपद की इस परम्परा का संवर्द्धन भैया बुवा हरदास द्वारा किया गया, जिनके मशहूर शागीर्द हुए – पंढ़रीनाथ नाभा, बिहारीलाल पण्डया, कुशाभाऊ टिल्लू ओर विनायक बुवा काले। केशवराव आप्टे के पुत्र रामचन्द्र उर्फ बालू भैया ने ध्रुपद गायन के साथ ही हारमोनियम वादन में भी प्रसिद्धी प्राप्त की थी। ध्रुपद गायन के साथ बीन और पखावज की संगत होने के कारण उज्जैन में बीन और पखावज के भी अच्छे कलाकार उभरे। श्रीकृष्ण राव रघुनाथ राव आष्टेवाले ने उस्ताद मुराद खाँ से बीन और सितारवादन सीखने के बाद बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। पीर खाँ भी बीन बजाने के लिए मशहूर थे। पखावज वादन में चैन भैया और रामदास का बड़ा नाम था। ख्याल गायकी की परम्परा को श्रीकृष्णशास्त्री बुवा, काका पुणेकर, उस्ताद मस्सूखाँ और मदनलाल विश्वकर्मा ने आगे बढ़ाया। गायन के क्षेत्र में नटवरलाल शाह, बण्डू पित्रे, अरविन्द पटवर्द्धन, प्रमोद शास्त्री भी उल्लेखनीय हैं। पं. नृसिंहदास महन्त, तबलावादन में निष्णात थे। 19वीं और 20वीं सदी में उज्जैन की ध्रुपद गायन मण्डलियों ने धूम मचा दी थी। इनमें तातू भैया, नारासाहब आष्टेवाले, बन्दे अली खाँ, मुराद अली खाँ, निम्बक बुआ और हरिदास की मण्डलियाँ उल्लेखनीय हैं।

उज्जैन की समुन्नत संगीत परम्परा के समर्थ प्रतिनिधि हैं – पं. ओमप्रकाश शर्मा। म.प्र. में मालवा के लोकनाट्य माच के प्रख्यात विशेषज्ञ, लेखक, निर्देशक तथा विलक्षण संगीतज्ञ पं. शर्मा अपने लोक अंचल में जीवित किवदन्ती बन गए हैं। विगत साठ वर्षों की रचनाशीलता में लेखन, गीत, संगीत और अपने दादा उस्ताद कालूराम द्वारा स्थापित माच घराने के पुनर्गठन के साथ ही उन्होंने समसामयिक, लोक और संस्कृत नाटकों में संगीत निर्देशन और विभिन्न प्रकार की संगीत रचनाएँ की हैं। आकाशवाणी के साथ सुगम संगीत के माध्यम से 20 वर्ष तक जुड़े रहे। कई छोटी–बड़ी फिल्मों के लिए भी उन्होंने संगीत संयोजन किया है। प्रख्यात संगीतकार भास्कर चंद्रावरकर एवं आभा मिश्रा ने उनपर केन्द्रित फिल्म का निर्माण किया है।

पुरातत्त्व संग्रहालय के लिए कई साल मेहनत करके पं. शर्मा ने माच की तर्जों या रंगतों के स्वरांकन और ध्वन्यांकन का महत्त्वपूर्ण काम किया है। प्रख्यात रंगकर्मी ब. व. कारंत के कई नाटकों में संगीत निर्देशन के साथ ही उनकी एक टेलीफिल्म 'औरत भली राम कली' में भी उन्होंने संगीत निर्देशन और अभिनय भी किया है।

कच्चे घर से शुरू हुई पं. ओमप्रकाश शर्मा का जीवनयात्रा में नाथ सम्प्रदाय, रघुनाथराव बाघ, शोभा गुर्टु, भाईलाल बारोट के साथ प्रसिद्ध फिल्म संगीत निर्देशक मदनमोहन तक अनेक संगीतज्ञों से सम्पर्क के कारण विविधता आती गई। वे मुम्बई के बहुत से फिल्म स्टुडियो से जुड़े रहे, कई साधु–संतों, फकीरों, दरवेशों की संगत की, मठों और दरगाहों की यात्रा की और अपने इस सघन अनुभव के आधार पर विलुप्त होते हुए उस्ताद कालूराम माच अखाड़े की पुनर्स्थापना की। उनके द्वारा लिखित दुर्लभ ग्रन्थों की खोज एवं संकलन, माच घराने के गठन हेतु गायकों, कलाकारों एवं संगीतकारों क प्रशिक्षण के साथ ही उन्होंने अखाड़े के पुराने खेलों एवं अपने द्वारा रचे गए नए खेलों के प्रदर्शन किए हैं। अनेक नाटकों की पुनर्रचना, माच का प्रशिक्षण एवं संगोत निर्देशन भी उन्होंने किया है। प्रख्यात नाट्य निर्देशक डॉ. कमलेशदत्त त्रिपाठी, प्रो. श्रीनिवास रथ, डॉ. प्रभातकुमार भट्टाचार्य, एम.के रैना, बंसी कौल, बृजमोहन शाह, रवि शर्मा, सतीश दवे, हफीज खान, संजीव दीक्षित, धीरेन्द्र कुमार, राजेन्द्र अवस्थी आदि के साथ काम करते हुए उन्होंने अभिनव रंग–संगीत रचा है। भारत भवन, भोपाल में ब.व. कारंत के साथ संगीत निर्देशन एवं भारत भवन के लिये माच खेलों का लेखन और निर्देशन उनके द्वारा किया गया है। राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, नई दिल्ली के विद्यार्थियों के लिए माच लेखन, प्रशिक्षण एवं निर्देशन के साथ ही अनेक शासकीय और अशासकीय संस्थाओं के साथ निरन्तर कार्य करते हुए उन्होंने रचनात्मक अनुभव विकसित किया है।

उनके सृजनात्मक योगदान को अनेक रंग विशेषज्ञों, संगीतकारों, कला मनीषियों, शिक्षाविदों एवं कलाप्रेमियों ने सराहा है। उन्हें पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम

के करकमलों से संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और मध्यप्रदेश के शिखर सम्मान सहित अनेक सम्मान और पुरस्कारों से नवाजा गया है।

संगीत विदुषी डॉ. अर्चना परमार के अनुसार – ''पं. ओमप्रकाश शर्मा मालवा की ऐसी सांगीतिक प्रतिभा हैं, जिनमें मालवी लोकसंगीत का मार्दव, शास्त्रीय संगीत की दक्षता और विलक्षण सृजनशीलता का त्रिवेणी संगम घटित हुआ है। पं. ओमप्रकाश शर्मा को संगीत पारिवारिक विरासत में मिला है। उनके पिता शालिगरामजी उज्जैन के प्रसिद्ध संगीतज्ञ थे तथा उनके पितामह कालूराजी माच के प्रख्यात गुरु थे, जिन्होंने दौलतगंज में माच के अलग अखाड़े की परम्परा आरम्भ की थी। उन्होंने ही माच के मंच पर पहली बार 'महाराजन' नाम की महिला कलाकार को प्रस्तुत किया था और माच में कई नए प्रयोग किए थे। पं. ओमप्रकाश शर्मा में आरम्भ से ही प्रयोगशीलता का गुण रहा है और इसीलिए उन्होंने लोक संगीत, शास्त्रीय संगीत, निर्गुणी संगीत, माच संगीत, संस्कृत ध्रुवागायन, संकृत नाट्य संगीत तथा भजन व गजल गायकी के क्षेत्र में सृजनात्मक प्रयोग किए हैं। संगीत की महारत के साथ ही उनके स्वर में नैसर्गिक मिठास और एक अनजाना दर्द है, कशिश है, इसलिए जब वे निर्गुणी गीत गाते हैं तो जैसे नादब्रह्म की आराधना स्वयं स्वर रूप में उपस्थित हो जाती है। पं. ओमप्रकाश शर्मा का मानना है कि निर्गुणी संगीत, न पूरी तरह लोक संगीत है, और न ही वह शास्त्रीय संगीत है, निर्गुणी संगीत तो बस निर्गुणी संगीत ही है, जो निराकार ब्रह्म की तरह केवल अनुभूति का विषय हो सकता है। निर्गुणी संगीत की व्याख्या शब्दों में नहीं की जा सकती। पं. ओमप्रकाश शर्मा ने शोधकार्य के दौरान मालवी लोकगीतों के स्वर संयोजन का विश्लेषण करत हुए शोधार्थी को बताया था कि इन गीतों में मालवी लोक संगीत का आधार है, शास्त्रीय राग–रागनियों की छाया है, संत साधकों की साधना का प्रभाव है और उदार लोक आस्था का संयोग है, जिनके रहते निर्गुणी संगीत में जैसी तन्मयता बनती है, गानेवाले की भी और श्रोता की भी, वह किसी भी अन्य संगीत में दुर्लभ है। मालवी निर्गुण संगीत की इस मगन कर देनेवाली विशेषता का प्रत्यक्ष अनुभव

स्वयं पं. ओमप्रकाश शर्मा के निर्गुण गायन में किया जा सकता है। (विक्रम विश्वविद्यालय में पी–एच्.डो. के लिए स्वीकृत शोध–प्रबन्ध)

वंश परम्परा

ओमप्रकाशजी ने चर्चा में कहा कि पिताजी बताया करते थे अपने पुरखों के बारे में कि हम लोग 'इकलिंगी नाग' नामक गाँव के रहने वाले थे, जो राजस्थान में नाथद्वारा के पास है। वहाँ एक मंदिर है, जहाँ चित्तौड़ के राजा–महाराजा पूजा करते थे। इकलिंगी नाग, वास्तव में महादेव का मंदिर है। वह मेवाड़ के राजघराने का मंदिर है। मेवाड़ के राजा उदयसिंह, राणा सांगा, महाराणा प्रताप आदि उसकी पूजा करते थे।

शर्मा जी के अनुसार इकलिंगी नाग गाँव में हमारे पूर्वज लकड़ी के कारीगर थे। इमारतों पर लकड़ी की बारीक कला का काम करत थे। गाडोरिये लोहार और बंजारों की तरह वे भी एक स्थान पर नहीं रहते थे। वास्तव में वे लोग मेवाड़ सेना के लिए लोहे के अस्त्र–शस्त्र बनाते थे। उन लोगों ने भी हमारे पूर्वजों के साथ राजस्थान से पलायन किया था। इन लोगों ने यह प्रण लिया था कि अब कभी घर बसाकर नहीं रहेंगे और आज भी यह लोग बैलगाड़ी पर अपना घर बनाकर एक जगह से दूसरी जगह घुमक्कड़ों की तरह घूमते रहते हैं। हमारे पूर्वज म.प्र. में रामपुरा–भानपुरा के पास संकोघाट ग्राम (जो अब चम्बल बाँध में डूब गया है) में आकर बस गए थे। बाकी लोग वहीं रह गए, लेकिन हमारा परिवार वहाँ से उज्जैन के पास उन्हेल में आ बसा। पुराने जमाने में जहाँ परिवार बसता था, वहाँ भैरव का स्थान बना लिया जाता था। संकोघाट में भी हमारे बाप–दादा ने 'भैरव' की स्थापना की थी। मैं जब छोटा था तो मेरे पिताजी मुझे भी लेकर गए थे, वहाँ एक छोटा–सा टापू था। उन्हेल (उज्जैन) में आज भी हमारे भैरवजी का मंदिर है। हमारा वंश है, छालवंश और यही हमारा गौत्र है। हम उज्जैन आए तो सबसे पहले हमारे वंश में थे पूरनजी, उसके बाद कान्हाजी, मगनीराम, तोलाराम, कालूराम, सालिग्राम और सालिगरामजी का बेटा मैं ओमप्रकाश शर्मा। मेरा बड़ा बेटा भूपेन्द्र, छोटा विजेन्द्र।

मेरी तीन बेटियाँ हैं ज्योति, राजश्री और हर्षा। उज्जैन में दौलतगंज के पास नगारची बाखल में हमारा परिवार रहने लगा था। हमारे मकान के सामने बड़ा चबूतरा था और नीम का बड़ा पेड़ था। उसमें नीचे झोपड़ी जैसा मकान बना था, वहाँ मेरी दादी रहती थीं। मेरे दादा कालूरामजी के एक भाई थे, जिनका नाम कन्हैयालाल था। उनकी कोई औलाद नहीं थी। एक जमाने में नगारची बाखल की गली उज्जैन का मेनरोड थी। नईसड़क और महाकाल मार्ग बाद में बने हैं। हमारे मोहल्ले में लालटेन जलती थी। एक तांगा निकल जान से रास्ता रुक जाता था। एक कथा और सुनाते थे हमारे पिताजी। हमारे पूर्वजों में कान्हाजी, कृष्ण के परम भक्त थे। 200–300 बरस पुरानी बात रही होगी। उज्जैन बहुत छोटा–सा नगर रहा होगा। कान्हाजी सांदीपनि आश्रम के पास गोमतीकुण्ड में नहाने जाया करते थे। एक बार बहुत रात में गए और बहुत देर बाद पूजा कर लौटे तो रास्ते में मंगलनाथ रोड पर इमली के पेड़ पर बैठकर एक छोटा बच्चा बांसुरी बजा रहा था। वह खड़े होकर सुनने लगे। बच्चा इतना छोटा था कि इमली के पेड़ पर चढ़ ही नहीं सकता था। लड़के ने पूछा– 'दादा कईं सुनी रिया हो ?' कान्हाजी ने कहा – 'थारी बंसी बड़ी अच्छी लगी री।' तो बच्चे ने कहा कि 'तम लई जाओ' तो कान्हाजी ने कहा कि 'म्हारे बजाते नी आवे।' बच्चे ने कहा कि 'कई बात नी, तम तो लई जाओ।' उसने हाथ बढ़ाकर बंसी दे दी। कान्हाजी बंसी को देखने लगे और एक क्षण बाद पड़ पर देखा तो बच्चा गायब था। कान्हाजी ने सोचा भगवान की क्या लीला है और घर आकर वह बंसी पूजा के स्थान पर रख दी।

धार्मिक और सामाजिक एकता का केन्द्र

शर्मा जी अपने दादा कालूराम की चर्चा करते हुए बतलाते हैं कि हमारे बा साहब कालूरामजी बड़े अच्छे गवैये थे। हमारे दादा के माच अखाड़े में हिन्दू–मुसलमान सब शामिल रहते थे। सिर्फ दौलतगंज अखाड़े में ही ऐसी परम्परा थी। मण्डली के लोगों ने सोचा कि हमारे माच मं रस कम है। ऐसा क्या करें कि हमारे माच में रस और ज्यादा हो। हमारे साथ एक उस्ताद खाजूजी थे, जो तंत्र

क्रिया के उस्ताद थे। खाजूजी से कहा कि रस कम आ रहा है, हाजरात बिठाओ तो उन्होंने पगपाईले (उल्टी तरफ से पैदा होने वाले) को बुलाया और उससे कुछ तंत्र क्रियाएँ आरम्भ की, फिर उससे पूछा कि तू कहां है, उसने कहा कि मैं जंगल में हूँ, उससे कहा कि तू सीधा जा, वो बोला चला गया। उससे पूछा कहाँ है, वो बोला एक बड़े दरवाजे पर, उससे कहा अंदर घुसकर एक कोने में खड़ा होकर देख क्या हो रहा है। वह बोला– झाड़ू लग रही है। एक बड़ी मशक (पटवाल) से भिश्ती पानी छोड़ रहा है। अब एक ओर कुछ लोग जाजम लेकर आ रहे हैं और जाजम बिछा रहे हैं। फर्रासन गाना गा रही है। अब एक तख्त बिछाया जा रहा है। बैठक बैठ गई है। बाजे बजाये जा रहे हैं। बीच में पालकी आ रही है। पालकी से महाराजा जैसा आदमी उतर रहा है। राजा सिंहासन पर बैठ गया है, सारे दरबारी भी बैठ गए हैं। खाजू ने आज्ञा दी सारे दरबारियों को इत्र लगाओ, वो बोला लगा दिया। पूछ रहे हैं हम क्या करें। खाजूजी ने कहा कि रस क्यों नहीं आ रहा ? जवाब मिला – भेरूजी की स्थापना करो। हरसिद्धि के तालाब में जाओ, वहाँ तुम्हें चार मूर्ति मिलेंगी। उनकी स्थापना करो। खाजू ने कहा कि वापस आ जाओ तो पगपायला अपने ध्यान से वापस आ गया। सारी सभा ढोल–ढमाके के साथ हरसिद्धि तालाब पहुँची। तालाब को खोदा गया, वहाँ भैरव, सरस्वती, हनुमान और गणेश की मूर्ति मिलीं। जुलूस के साथ उन मूर्तियों को दौलतगंज लाया गया और चौराहे पर चारों दिशाओं में स्थापना की गई। उसके लिए दादाजी ने लिखा था कि ''मदद पर भैरवनाथ भगवान।'' असल स्थान तो हमार अखाड़े का आज भी वहीं पर है। हम लोग सूफी संतों को भी मानते हैं जैसे ख्वाजा गरीब नवाज, निजामुद्दीन औलिया, हजरत अमीर खुसरो, नागपुर के बाबा ताजुद्दीन औलिया। नगापुर में मेंहदी बाग में बहुत से वली हैं। अमीरउद्दीन साहब की हवेली है। वहाँ मस्जिद व मूतियाँ भी हैं। मेरी उनमें भी आस्था है।

लोकनाट्य माच और कालूरामजी का घराना

मध्यप्रदेश के मालव–अंचल का प्रतिनिधि लोकनाट्य 'माच' लगभग दो सौ वर्ष पुराना है। पं. सूर्यनारायण व्यास 'माच' परम्परा की शुरूआत सदियों पुरानी संस्कृत

की भाण–कृतियों से मानते हैं। डॉ. रघुवीरसिंह के अनुसार राजस्थान के लोकनाट्य 'ख्याल' से ही माच जन्मा है। माच की जन्मस्थली उज्जैन है और समूचे मालव अंचल में पिछले दो सौ वर्षों से इसका प्रचलन बना हुआ है।

भागसीपुरा, उज्जैन के निवासी गुरु गोपालजी माच के आदि प्रवर्त्तक हैं। प्रख्यात माचकारों की शृंखला में गुरु बालमुकुंद, गुरु रामकिशन, गुरु भंवरलाल, गुरु राधाकिशन, उस्ताद कालूराम गुरु, फकीरचंद गुरु, शिवजीराम, गुरु चुन्नीलाल आदि उल्लेखनीय हैं।

कालूराम माच घराना

दौलतगंज, उज्जैन की माच परम्परा की शुरूआत उस्ताद कालूरामजी ने की थी। उनका जन्म संवत् 1914 भादव सुदी चतुर्थी का और मृत्यु संवत् 1974 अगहन सुदी चौथ को हुई थी। ढूंढा सम्प्रदाय के उस्ताद शंकरलाल से उन्होंने लेखन और गायन सीखा था। उन्होंने हजारों लावणी की रचना की थी। उन्होंने माच के 22 खेल लिखे थे। उनके अखाड़े में 250 शिष्य थे और लहरगीर महाराजिन गुसांई, गोमती बाई बैरागन – दो शिष्याएँ थीं। माच के इतिहास में मंच पर स्त्रीप्रवेश का सूत्रपात उन्होंने ही किया था। वे शास्त्रीय संगीत और अभिनय कौशल में पारंगत थे। गले की बेमिसाल मिठास की वजह से दिल्ली की एक ग्रामोफोन कम्पनी ने उनके गीतों के रेकार्ड तैयार किए थे, जो बेहद लोकप्रिय हुए थे। उनके खेलों का प्रकाशन भी हुआ और उनकी हजारों प्रतियाँ बिकीं। उनकी रचनाएँ इतनी लोकप्रिय हो चुकी थीं कि उनके प्रकाशन की होड़–सी लग गई थी। डॉ. शिवकुमार मधुर ने अपनी पुस्तक 'मध्यप्रदेश का लोक नाट्य–माच' में यह स्वीकार किया है कि माच परम्परा को लोकप्रिय बनाने में उस्ताद कालूरामजी का योगदान अद्वितीय है। डॉ. मधुर के अनुसार ''कालूरामजी की हस्तलिखित लावणियाँ और माच खेलों की पाण्डुलिपियाँ पं. ओमप्रकाश शर्मा के पास सुरक्षित हैं। वे पाण्डुलिपियाँ सुन्दर अक्षर और चित्रांकन के कारण दर्शनीय भी हैं।''

उस्ताद कालूराम का वास्तविक नाम गणपत था। उनके जन्म से पहले दो–तीन भाइयों की मृत्यु हो चुकी थी। उस समय ऐसी मान्यता थी कि उल्टा–सीधा नाम रखने से बच्चों को नजर नहीं लगती है। इस कारण उनका नाम 'कालूराम' रखा गया। वे लावणी के बहुत बड़े लेखक और गायक थे। उस समय तीन तरह की मंचीय गायन शैली चलती थी। इन मण्डलियों को अखाड़ा कहा जाता था, इनके नाम तुर्रा, कलंगी और दुंडा थे। कालूरामजी दुडा सम्प्रदाय के थे। इनके गुरु शंकरलाल दूंडा थ। गुरु की मृत्यु के पश्चात् कालूरामजी ने हनुमानजी को अपना गुरु माना। कालूरामजी सामाजिक और साम्प्रदायिक सौहाद्र में बहुत विश्वास करते थे। उन्होंने पिंजारवाड़ी के मुजरा करने वाले और गाने बजाने वालों को मुहर्रम पर नकाशीदारी लकड़ी का ताजिया बनाकर भेंट किया था। वहाँ बहुत खूबसूरत सारंगी बजाने वाले रहते थे। कालूरामजी ने साम्प्रदायिक सौहार्द्र के लिए कई माच लिखे थे। उर्दू में लिखे एक माच में उन्होंने लिखा है कि सूरजकरण, मौलवी साहब के यहाँ फारसी सीखने जाता है। चंदकला वहाँ पहले से सीख रही होती है। मौलवी साहब चंद्रकला से कहते हैं कि तू इसे अलीफ–बे सिखा, मैं अभी आता हूँ। अब चंद्रकला पढ़ाती है, दोनों की वार्ता कुछ इस प्रकार होती है–

चंद्रकला – अलीफ आप करतार घनी।

सूरजकरण – चंद्रकला से म्हारे प्रीत घनी

चंद्रकला – से साबित करना सलाह

सूरजकरण – मत तरासावे चंद्रकला

इस तरह अलीफ से ये तक सारे अक्षर संवादों में आते हैं। उस्ताद कालूराम के अनुसार माच में समाज के लिए कुछ न कुछ सन्देश होना चाहिए और विशेषकर रुचिकर, अनुरंजक खेल के साथ कर्णप्रिय संगीत भी होना चाहिए। इस कारण पूरे भारत में प्रचलित लोकनाट्य, मंच संगीत, नौटंकी, ख्याल, तुर्रा, कलंगी, पारसी शैली

आदि का उन्होंने अध्ययन किया और उनसे किस्से, कहानियाँ, गीत, संगीत लेकर माच शैली में उनका प्रयोग किया। उन्होंने माच में नौटंकी भी लिखी।

उस जमाने में लावनी लोककला मालवा में बड़ी लोकप्रिय थी। लावनी के तीन सम्प्रदाय थे – तुर्रा, कलंगी और टुंडा। टुंडा सम्प्रदाय के उस्ताद शंकरलाल के शिष्य थे, कालूरामजी। जगन्नाथपुरी की मूर्तियों में श्रीकृष्ण के हाथ–पैर नहीं हैं, उसे आराध्य मानकर वे अपने को टुंडा सम्प्रदाय कहते थे। इस सम्प्रदाय में तुरन्त शायरी होती थी और टेक झेलने वाले को तुरन्त ही कुछ शेर बनाने पड़ते थे। कालूरामजी इस फन में माहिर थे। उनकी बनाई हुई लावनियां अत्यन्त प्रसिद्ध थीं। लावनियों के बल पर ही शंकरलालजी के स्वर्गवास के पश्चात् कालूरामजी को गुरु पद प्राप्त हुआ था। माच के माध्यम से वे बड़ी निष्ठा से भगवद् भक्ति में मग्न रहने लगे थे। उनकी लावनियाँ लोगों को मंत्रमुग्ध कर देती थीं। उनके इस फन से जलकर गुरु बालमुकुंदजी की मण्डली के कुछ लोगों ने उन पर छींटाकशी की। इस छींटाकशी के कारण कालूरामजी के शिष्यों ने गुरु को माच लिखने के लिए प्रेरित किया। कालूरामजी ने तब 'प्रताप मुकुट' खेल बनाया। कालूरामजी के अधिकतर खेल बालमुकुंदजी के जवाब में ही रचे गए हैं जैसे छोगरतन, भरथरी के और चित्रमुकुट, सुदबुध सालंगा के जवाब में लिखे गए हैं। कालूरामजी के खेलों की सबसे बड़ी विशेषता है बहर का वजन, हर छन्द मात्रिक होने से कहीं भी मात्राओं की गलती नहीं मिलती है। मात्राओं की सही जानकारी होने से उनके छन्दों में माधुर्य भी है। मण्डलियों के माच में यह विशेषता नहीं मिलती है।

कालूरामजी सिर्फ गायक या अभिनेता ही नहीं थे, बल्कि हस्तकला में भी निपुण थे। उनके हाथ की बनाई हुई कलाकृतियों या डिजाईनों की बारीकियाँ देखते ही बनती थीं। व सुन्दर डिजाईनें अभी भी ओमप्रकाशजी के पास उपलब्ध हैं। कालूरामजी की मण्डली का मुख्य आकर्षण थी, उनकी शिष्या लहंरगीर, जो महाराजिन के नाम से प्रसिद्ध थीं। लहंरगीर, नाथ सम्प्रदाय की जोगन थी जो प्रायः पुरुष वेश में ही रहती थीं। कालूरामजी ने ही उसके ठहरने–खाने का इंतजाम

कराया था। इसी अहसान के कारण वह आजीवन कालूरामजी की मण्डली में रही। उसके सौन्दर्य और मधुर कण्ठ के कारण कालूरामजी के माच का आकर्षण और अधिक बढ़ गया था। कालूरामजी के माच में करीब 80 से 85 रंगतो का उपयोग होता है, जो संगीत की सूक्ष्म जानकारी वाला ही कर सकता है।

कालूराम उस्ताद ने 22 माच लिखे थे, जिनमें से सात प्रकाशित हैं– 1. सूरजकरण, चन्द्रकला 2. छबीली मटियारिन, 3. जान आलम, 4. नागवती, 5. मधुमालती, 6. राजा छोगरतन, 7. चित्रमुकुट। ओमप्रकाशजी के पास कालूरामजी द्वारा रचित 13 माच सुरक्षित हैं – प्रताप मुकुट, सेठ रूपसेन, त्रिया चरित्र, हीरा मोती, धोल कुँवर सुल्तान, इंद्रसभा, राजा रिसालू, प्रहलाद लीला, रामलीला, हरिशचन्द्र, निहाले सुल्तान तथा हीर रांझा।

पं. ओमप्रकाश शर्मा अपने माच घराने की विशेषता के बारे में बतलाते हैं कि माच के विभिन्न अखाड़ों में अलग–अलग प्रकार से भिश्ती आते हैं। हमारे यहाँ पंजाबी भिश्ती है, जो एक प्रकार से विदूषक होता है। वह कहीं शेरमार खाँ होता है और कहीं कुछ और। हमारे यहाँ उसे बेढब कहते हैं, बेढब यानि बेढंगा। जो खुद बेढब है लेकिन सबको ढंग में ले आता है। हमारा भिश्ती कुछ इस तरह शुरू करता है–

भिश्ती – सदर सड़क छिड़काव लगाया में भिश्ती पंजाबी आया
आज बताउं बुनियाद माच की, मुझ पर सासवत की है छाया
धरती इसकी माता बनी है, दूध पिलाकर गोद खिलाया,
ये तो है पैदाइश माच की जो की मैंने खेल बताया
खाना बंदी हम नहीं करते, ऐसा भरण इस माच ने पाया

माच के आरम्भ के बारे में पं. ओमप्रकाश शर्मा की यह गजल लोकप्रिय रही है –

रिद्धि सिद्धि चंवर डुलावे, गणपत पूजा पेला।

हो अगवान बिराजो भेरो, बतक रूप अलबेला।

सांय करो अंजली नाथ तम, आज माच हम खेला।

माच के आरंभ के बारे में गजल में कहा है–

पूजा मानक थम ने, हाथ जोडो ने हमने

जै जै कार करी ने, इन पर ध्यान धरी ने

ने फिर होए सलामी, हमारा गुरु है नामी

सभा में शीष झुकावा, रंगभर गजल सुनावा

भिश्ती मशक लई आवे, फिर छिड़काव लगावे

फिर फर्रासन आवे पचरंग जाजम लावे

सभा का बीच बिछावें, रंगत दूगनी होवे

देवता आन बिराजे, ढोलक पेटी बाजे

अजी फिर भेरो महाराज।

भेरो महाराज सदा प्रसन्न रहजो, माच आइने दर्शन देजो

दुश्मन की चोट काट उलटी कीजो

दुर्बल की लाज महाराज रखी लोजो

आए सवारी महाराजा की, खेल जमे है आला

महारानी की कई कैनी जी पहने मूंड की माला

मैं हूँ बेढब जवान रंगीलो खोलूं अक्कल ताला

दुर्बल ओम कहे मंडली में चाल चालू मतवाला

ढोलक चाल बदल के

(मानक का अर्थ है खंभा, जो माच के कोने पर गाड़ा जाता था।)

पं. ओमप्रकाश शर्मा के अनुसार मेरे दादा कालूरामजी का देहान्त मेरे पैदा होने से 20 वर्ष पहले ही हो गया था। मेरा जन्म सन् 1938 में हुआ था। माच में सबसे पहले नारी पात्र का प्रयोग उस्ताद कालूरामजी ने किया था। दोनों पुरुष माच कलाकारों के साथ बराबरी से जनानी का पाठ करती थीं। उस जमाने में सेठ लोग माच के मंच पर पहनने के लिए हमें सेठानियों के कपड़े और जेवर दिया करते थे। एक बार हमें एक हार दिया था, जिसमें हीरा जड़ा हुआ था। खेल के दौरान हार कहीं गिर गया। माच खत्म होने के बाद सबने खोजा पर नहीं मिला तो सेठ ने कहा कि गुम गया तो गुम जाने दो, मैं दूसरा हार दे दूँगा। तब माच के सरंक्षक ऐसे दिलदार लोग होते थे। कालूरामजी ने माच में नई–नई वस्तु भी शामिल की थी। उर्दू में महातलतजान माच की रचना भी की थी। हीर रांझा और इन्द्रसभा लिखा था। एक कलाकार इंद्रकुमार थे हमारे अखाड़े में। बहुत उम्दा गाते थे। मुझे माच की 135 रंगत याद हैं, इनमें से मैंने 85 रंगतों का नोटेशन करके आदिवासी लोककला संग्रहालय, भोपाल को दे दिया है। इस काम में चार साल लग।

उस्ताद कालूरामजी के सुपुत्र उस्ताद शालिग्रामजी ने कालूराम माच घराने की परम्परा को न केवल आगे बढ़ाया, बल्कि कई नए कीर्तिमान स्थापित किए। उन्होंने लेखन के साथ ही अभिनय के क्षेत्र में भी प्रसिद्धि हासिल की थी। उनके द्वारा अभिनीत रोहित की भूमिका खूब लोकप्रिय हुइ थी। उज्जैन को संगीत परम्परा में उस्ताद शालिग्रामजी का उल्लेखनीय योगदान रहा। उनके मधुर कण्ठ के कारण ही संगीतकारों ने उन्हें 'मालवा मयूर' की उपाधि से विभूषित किया था। उन्होंने दो संस्थाओं की स्थापना की थी – आनन्दी मित्रमण्डल और आर्यकुमार मित्रमण्डल। उस्ताद शालिग्रामजी ने अपने राष्ट्रप्रेम के गीतों के कारण स्वतंत्रता सेनानी की मान्यता प्राप्त कर ली थी। दिल्ली की ग्रामोफोन कंपनी ने उनके गानों के अनेक रेकार्ड तैयार किए थे, जिनकी पाण्डुलिपियाँ और रेकार्ड पं. ओमप्रकाश शर्मा के पास सुरक्षित हैं।

शर्माजी बतलाते हैं कि पिताजी ने मुझे एक सौ पैंतीस रंगते सिखाई थी। पिताजी कहते थे कि जो होता आया है माच के संगीत में, वह तुम सीख लो, भले ही करना मत। मेरे पिताजी ने मेरे दादा से सीखा था। मेरे पिताजी बहुत अच्छे लेखक थे। वे आजादी के आन्दोलन में व्यस्त रहते थे। उन्होंने देशप्रेम और आजादी के अनेक गीत, कविता लिखी थीं। उन्होंने एक माच 'शिव पार्वती' लिखना शुरू किया था, लेकिन खेला नहीं। शिव पार्वती का एक गीत है, सबसे ऊँचा मान जगत् में सबसे ऊँचा मान (हिमालय पर्वत)

ओमप्रकाशजी बतलाते हैं कि पिताजी कुशल कलाकार थे। वह 'हरिशचंद्र तारामती' में रोहित का पार्ट करते थे। दादा माच लिखते थे, मंडली चलाते थे और माच करवाते थे पर स्वयं अभिनय नहीं करते थे। मेरी दादी पिताजी के बचपन में परलोक चली गई थीं। माच में एक प्रसंग है कि रोहित को साँप काट लेता है। मेरे पिता रोहित का पार्ट करते थे। मेरे दादा दूर बैठकर देखते थे। उसमें एक टेक आती है– ''माता मेरा गला सूखा, मुँह में टपका दो पानी'', मेरे दादा, पिताजी को इस दृश्य में देखकर रोया करते थे।

मेरी शिक्षा और मैं

पं. ओमप्रकाश शर्मा का जन्म जनवरी 1938 को उज्जैन में हुआ था। बचपन को याद करते हुए वे कहते हैं कि मैं बहुत पतंग उड़ाता था। मेरे पिता आध्यात्मिक आस्थावाले थे, नईसड़क वाले उमाशंकर नागर के साथ सत्संग करने चले जाते थे, मैं बचपन में माता–पिता की नहीं सुनता था और बहुत जिद्दी था। दिन भर पतंग उड़ाया करता था और सूरज की ओर ही देखता था, इस कारण मेरी दोनों आँखें चली गई और मैं अँधा हो गया। दो–तीन महीने बाद पिताजी आए। उन दिनों उज्जैन सिविल हास्पिटल में एक ही डॉक्टर थे खाण्डेकर जो इस बीमारी का इलाज करते थे। उनके उपचार से आँखें थोड़ी बहुत ठीक हुई। बाद में फिर मेरी आँखों में फूला पड़ गया और खराब हो गईं तब दूसरी बार ऑपरेशन हुआ तो थोड़ी ठीक हो गईं पर कुछ दिन बाद फिर आँखों की रोशनी चली गई और दिखना बंद हो गया।

केवल एक आँख से थोड़ा–थोड़ा दिखता था। फिर डॉ. खान आए और उन्होंने ऑपरेशन किया। जब मेरी आँखें खराब हो गईं तो मैं दुनिया से पूरा कट गया। स्कूल आदि सब छूट गया। दुनिया से इस कटाव के कारण मैं संगीत से और ज्यादा जुड़ गया। मुझे लगता है कि एक आँख देकर मैंने संगीत सीखा तो यह सौदा बहुत सस्ता है। संगीत की मेहरबानी है कि मैं कुछ हूँ वर्ना मैं तो बहुत उद्दण्ड और शैतान था, पता नहीं मेरा क्या होता!

मेरे साथी

सब तरह के दोस्त थे मेरे। जेबकट, चोर, लुटेरे, आवारा, शराबी, साधु, संत कवि, संगीतकार, तवायफों के कोठे पर गाने–बजाने वाले उस्ताद और साजिंदे, गायक, शायर, सब की सोहबत थी। मेरा एक ही पक्का दोस्त था, तुलाराम जिसके साथ मेरी हर तरह की बातें होती थी। वह अशोकनगर का रहने वाला था। अब शास्त्रीनगर, उज्जैन में रहता है।

माच घराने का पुनर्गठन

ओमप्रकाश जी याद करते हैं कि पिताजी के न रहने पर हमारा अखाड़ा बंद ही हो गया था और मेरे पास माच का एक खेल तक नहीं था। मेरे पिताजी ने दादाजी के अनेक माच छपवाए, जो बहुत बिके। मुझे अफसोस है कि पिताजी के बहुत समझाने पर भी मैंने कुछ भी संभालकर नहीं रखा, जबकि अपने पूर्वजों की लिखित–अलिखित परम्परा को संभालना मेरा धर्म था। मुझे जब इसका अहसास हुआ तो मैं इस काम में लग गया। मेरे पिताजी के एक बड़े भाई थे उनके पास मेरे दादाजी के माच और गीत गजल आदि लोहे के बक्से में रखे हुए थे। मकान ऊपर से टूटा था, जहाँ यह सब सामान पड़ा था। मैंने अपने ताऊजी से वह सामान पढ़ने हेतु माँगा तो उन्होनें देने से इंकार कर दिया और पानी टपकने से सारी किताबें नष्ट हो गईं। मेरे दादा के कार्यों के संकलन हेतु मेरी बेचैनी बढ़ती गई। मैं उस जमाने के बचे हुए बुजुर्गों के पास गया। मंगल जी ने यह जानकारी दी कि तोपखाने में एक हम्माल बचा है, उसके दादा मेरे दादा के माच घराने में कलाकार थे। मेरे

दादा के अखाड़े की उसके पास एक किताब है और उस पर हर पेज पर रंगीन चित्र भी बने हुए हैं। उससे किताब माँगी, उसने मना कर दिया। मैंने कहा कुछ पैसे लेकर मुझे दे दो। उसने 10 हजार रुपए माँगे। आज से 50 वर्ष पूर्व 10 हजार रुपए बहुत होते थे। मैंने पता नहीं कैसे 10 हजार इकट्ठे करके वह किताब खरीद ली। जबकि उस समय हमारी आर्थिक हालत ठीक नहीं थी। वह किताब आज भी मेरे पास है। हमारे अखाड़े में एक ताराचंद्र थे, कुछ किताबें उसके पास थीं, पहले तो उसने भी मना कर दिया फिर इस शर्त पर कि हर दिन तुम्हें एक किताब दूँगा, दूसरे दिन वापस करना होगी। मैं हर दिन एक किताब लाता और अपने साथियों के साथ बैठकर उसकी नकल करता और दूसरे दिन वापस कर देता। उन दिनों फोटोकॉपी का जमाना नहीं आया था। इस तरह हाथ से लिखवा–लिखवाकर 15–16 माह में खेल इकट्ठे किए। फिर अपने माच मण्डल का गठन कर इनको प्रस्तुत करना शुरू किया। अखाड़े के गठन के बाद लोगों की रुचि बढ़ती गई और 1975 तक खेलों का मंचन होता रहा। चूँकि हम व्यावसायिक नहीं थे इसलिए बाद में हमारे आयोजन बंद हो गए।

आमप्रकाशजो कहते हैं कि हमने सारी जिन्दगी माच किया और सिखाया है। सरकार की कुछ योजनाएँ हैं जो अव्यावहारिक हैं। वह चाहते हैं कि हम साल, छः महीने में माच सिखाकर प्रस्तुति करवाएँ जबकि माच की साधना मंच तक पहुँचने तक 5 से 6 वर्ष की होती है। यह केवल वही विद्यार्थी कर सकत हैं जिनमें सुर, ताल, कविता की प्रतिभा हो।

हारमोनियम को आमद

मालवा में पहले–पहल हारमोनियम की आमद का किस्सा आमप्रकशजी इस प्रकार सुनाते हैं – एक आदमी, बेहद फटेहाल आकर खड़ा हुआ तो हमारे दादा ने पिताजी से कहा जाकर देखो कौन है। बेचारा कैसे खड़ा है ! पिताजी ने पूछकर बताया कि वह बहुत भूखा है, 3–4 दिनों से कुछ नहीं खाया है। दादा ने उसे बुलवाया और खुद खाना बनाकर खिलाया, क्योंकि उस वक्त परिवार में कोई महिला

नहीं थी। खाना खाकर कुछ देर आराम करने के बाद उससे पूछा कि अब बताओ तुम कौन हो, कहाँ से आए हो ? उसने बताया कि – मैं कराची का रहने वाला हूँ। जब मैं कराची में था तो मैं एक तांत्रिक का चेला हो गया। तांत्रिक ने कहा कि मं तुम्हें बहुत पैसा दूँगा तो मैं उसके प्रलोभन में आ गया, साथ में लाहौर और फिर अमृतसर गया। रात को शमशान में पहुँचे तो वह अपनी तंत्रक्रिया करने लगा। कुछ देर बाद मुझे एक धागा दिया और कहा कि ये धागा लेकर खेजड़े के पेड़ तक चला जा और कोई भी आए तो डरना मत। मैंने वैसा ही किया। अचानक मुझे वैसा ही धागा पकड़कर सामने से भयानक और मुझसे दस गुना बड़ा आदमी आता दिखा तो मैं डर गया और मैंने धागा खेजड़े के पेड़ से बाँध दिया और दूर भाग गया। उस भयानक आदमी ने खेजड़े के पेड़ के टुकड़े–टुकड़े कर दिए। मैं डरकर वहाँ से भाग निकला। वहाँ से दिल्ली और फिर माँगते–खाते यहाँ आ पहुँचा। राहगीर ने बताया कि साब, मैं हारमोनियम बनाना जानता हूँ। दादा ने पूछा कि हारमोनियम क्या होता है भाई ? राहगीर ने बताया कि ऐसा बाजा होता है, जैसा हम गाते हैं, वैसा वो बजाता है।

दादा ने कहा कि मेरे छोरे को भी बनाना सिखा दो। तो इस तरह उन्होंने मेरे पिता को हारमोनियम बनाना सिखाया और इसके पश्चात् उसने कहा कि इसमें सुर चाहिए। मेरे दादा ने पूछा ये सुर क्या होता है ? राहगीर ने बताया कि ये पीतल की रीड होती है (हारमोनियम में लगने वाली सामग्री) चाहिए। जो दिल्ली में मिल सकती हैं। इस तरह दिल्ली से सामान (रीड) लाकर हारमोनियम तैयार किया गया। सभी को बड़ी खुशी हुई। फिर वह राहगीर चला गया। दादाजी ने कहा कि यार तुम्हारा बाजा बज रहा है, लेकिन सुर में नहीं बज रहा है। पिता ने पूछा – तो क्या करें ? दादा ने कहा कि तवायफ के यहाँ सोहबत करो, मेरे समझाने से समझ में नहीं आएगा। वहाँ समझ आएगा। वहाँ गए, पहले काफी गुणी लोग वहाँ बजाया करते थे। बहुत इज्जतदार लोग भी थे। मैं भी अपने पिता के साथ कई बार कोठों पर गया। पहले अच्छे घरों के लड़कों को तालीम के लिए तवायफों के यहाँ भेजा

जाता था। वहाँ सारंगी बजती थी, उसे सुनकर सुर मिलाते थे। सुन–सुन कर सुरों की समझ और बढ़िया हो गई। फिर हारमोनियम के सुर को सही किया मेरे पिताजी ने। तब जाकर वो बाजा सुरीला बजा। यह मालवा क्षेत्र का पहला हारमोनियम था। इससे पहले लोगों को ये जानकारी ही नहीं थी कि हारमोनियम क्या होता है!

कालूरामजी ने अपनो रचनाओं मं खुद का नाम लिखा है – 'दुर्बल सेवक'। शंकरलालजी के शांत होने के बाद कालूरामजी ने हनुमानजी को अपना गुरु माना था। इसलिए जब भी माच की शुरूआत होती है तो महावीर की भी जय बोली जाती है और मैं भरत महाराज, गणपती, शारदा, महावीर और कालूरामजी की जय बोलता हूँ।

मेरे दादा का, उनके जीवित रहते कोई चित्र नहीं था। जब वे शांत हो गए थे उस वक्त चित्रकार को बुलवाकर उन्हें बैठाया गया, सर पर पगड़ी रखी गई, जो कि थोड़ी टेढ़ी हो गई, उसे वैसा ही रहने दिया और उनका चित्र बनवाया गया। जो आज भी मेरे पास है। मैं जब भी माच लिखने बैठता था तो मेरी जहाँ बैठक थी, वहाँ 'बा' का फोटो लगा रहता था। देर रात को सबके सो जाने के बाद मैं लिखने बैठता था। एक रोज मैं रात को लिखने बैठा तो मुझे कुछ सूझ नहीं रहा था क्या लिखूँ तो मैंने दादा के चित्र की ओर देखकर मन ही मन कुछ कहा और मुझे अचानक नई कल्पनाएँ सूझने लगीं।

मेरे पिताजी के बड़े भाई के बेटे थे जगन्नाथ जी और उनके बेट थे मदनलाल जी, जिन्हें मैं सगा बड़ा भाई मानता था। वे भी मुझे बहुत प्रेम करते थे। उन्होंने संगीत की शिक्षा मेरे पिताजी से प्राप्त की थी और वे शास्त्रीय गायन, गजल और भजन के बड़े उस्ताद थे। वे आकाशवाणी, इन्दौर से गाते थे तथा कई साल मुम्बई के संगीत संसार में भी रहे थे।

उस्ताद कालूराम माच घराने के वर्तमान उत्तराधिकारी पं. ओमप्रकाश शर्मा ने न केवल इस माच घराने को जीवित रखा है, बल्कि अपने बहुमूल्य नेतृत्व से इसे समृद्ध बनाया है। पाँच वर्ष की अल्पायु से ही उस्ताद ओमप्रकाशजी संगीत का

अभ्यास कर रहे हैं। उन्होंने अपने यशस्वी पिता उस्ताद शालिग्रामजी से शास्त्रीय संगीत और माच का प्रशिक्षण प्राप्त किया। अपने बड़े भाई मदनलालजी से उन्होंने शास्त्रीय गायन और वायलिन का प्रशिक्षण ग्रहण किया। शास्त्रीय संगीत तथा सुगम संगीत में विधिवत् प्रशिक्षण उन्होंने रघुनाथ वाघ, शोभा गुर्टु और भाईलाल बारोट से प्राप्त किया। उस्ताद ओमप्रकाश शर्मा न केवल माच में पारंगत हैं, बल्कि शास्त्रीय गायन में भी उनकी सुपरिचित शिष्य परम्परा है।

मेरे साथी कलाकार

अपनी मण्डली के कलाकारों को याद करते हुए ओमप्रकाशजी कहते हैं– ''करोड़पति सेठों के घरों से, माच के लिए आभूषण आते थे।'' उज्जैन के पास कदवाली गाँव है, वहाँ से जगन्नाथजी हमारे साथ माच करने आते थे। वे बहुत सुन्दर जनानी का माच किया करते थे। माच में पुरुष ही महिलाओं के पार्ट किया करते थे। जगन्नाथ मतवाली गाँव से जनानी वेशभूषा आदि मेकअप करके हमारे अखाड़े में माच करने उज्जन आते थे। खेलों की कोई संख्या निश्चित नहीं होती थी। कहीं से आर्थिक सहायता नहीं मिलती थी। पूरे समाज के सहयोग से माच के आयोजन होते थे। सेठ, साहूकार, व्यापारी, किसान, मजदूर आदि इस आयोजन का हिस्सा होते थे।

पं. ओमप्रकाश शर्मा हारमोनियम, वायलीन, सितार और एकतारे जैसे अनेक साज बजा लेते हैं, इस बारे में वे बड़ी विनम्रता से कहते हैं एक को साधे तो सब सध जाए, जिसको लय का ज्ञान है उसे सुर–ताल का ज्ञान अपने आप आ जाता है। मैं सब साजों का मास्टर नहीं हूँ, लेकिन कैसा साज कहाँ बजना चाहिए, इसका मुझे ज्ञान है और मैं थोड़ा बजाकर, समझा देता हूँ।

संगीत निर्देशन के क्षेत्र में पारम्परिक माच, संस्कृत, हिन्दी नाटकों से पाश्चात्य संगीत तक पं. ओमप्रकाश की सुदीर्घ रचनात्मक यात्रा रही है। अपनी विविधतापूर्ण यात्रा के बारे में वे कहते हैं – राजस्थान के झालावाड़ में मेनका जो बहुत अच्छा गाती थीं और शास्त्रीय गायन में निपुण थीं। मेनका की बेटी शोभाजी भी बहुत

बढ़िया गाती थी, उन्होंने रूपिया खाँ से भी गाना सीखा था। शोभाजी ने बम्बई के गुट् जी से शादी कर ली। मुझे बचपन से ही म्यूजिक कॉलेज में छोड़ दिया गया था। वहाँ हर हफ्ते एक संगीत सभा होती थी, जिसमें विद्यार्थी गाते थे और अंत में गुरु गाते थे। रघुनाथप्रसाद वाघ (जो मेरे पिताजी के शिष्य थे) वहीं संगीत शिक्षक थे। जिस दिन मैं गया उस दिन संगीत सभा थी। वाघ साहब ने मुझे बठा दिया और कहा तू बाजा बजा। जैसा वो गाते थे, वैसा मैं बजाता था। वहाँ बरसों मैंने अभ्यास किया, लेकिन संगीत विद्यालय में मैंने विधिवत् प्रवेश नहीं लिया। उज्जैन में कोठों पर मुजरे होते थे, जिसमें संगीतकार संगत करते थे और बाजार में उनको काफी धाक थी। मेरे एक अजीज दोस्त थे। उनके कारण मैंने उज्जैन के कोठों पर भी बजाया और उस समय इन्दौर के बम्बई बाजार में भी गाने और बजाने के कोठे थे, मैंने वहाँ भी बजाया और बहुत सीखा। झालावाड़ से शोभाजी उज्जैन में लालचंद सेठ के यहाँ आई थों। मैंने जब उनके सामने बजाया तो उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हें और सीखना चाहिए। तुम मेरे पास सीखने बम्बई आ जाओ। मैं उनके पास बम्बई चला गया। ग्रांट रोड पर उनका मकान था। मैं शोभा गुट्जी से संगीत सीखता था और वहीं खाता–पीता और रहता था। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा तुम दिनभर यहाँ रहते हो, बम्बई घूमने क्यों नहीं जाते। मैंने कहा – मैं तो आपसे सीखने आया हूँ यदि आप कुछ कर सकते हो तो फिल्मों की संगीत रिकार्डिंग देखना चाहता हूँ। उनके एक बेटे थे त्रिलोक, जो फिल्मों में रिदमिस्ट थे। उन्होंने मझे उनके साथ कर दिया। वे मुझे कई स्टुडियो में ले गए। मैंने उस जमाने के मशहूर गायकों, संगीतकारों और संगीत निर्देशकों का काम साक्षात कई बार देखा और सुना। मेरी खुशकिस्मती है कि मैंने लता, आशा, मुकेश, किशोर कुमार और तमाम बड़े गायकों को नजदोक से सुना। महीनों बाद महान् संगीतकार मदनमोहनजी की नजर मुझ पर पड़ी। उन्होंने मुझसे पूछा मैं कई महीनों से तुम्हें देख रहा हूँ। तुम कहाँ के हो और यहाँ क्या करते हो। मैंने कहा उज्जैन से आया हूँ और मैं यहाँ सुनने आता हूँ तो उन्होंने मुझसे कहा कि कुछ गाते–बजाते भी हो। मैंने कहा ज्यादा नहीं बस थोड़ा सा हारमोनियम बजा लेता हूँ। उन्होंने मुझसे कहा कि मेरा

पता ले लो और 7 बजे मेरे घर आ जाना। मैं दूसरे दिन उनके घर पहुँचा पर मैं 5 मिनिट लेट हो गया था, मैंने अन्दर अपने आने की सूचना भेजी। उन्होंने अन्दर से कहा – जिन्हें समय की कदर नहीं मैं उनसे नहीं मिलता। फिर मैं 2 साल तक स्टुडियो– स्टुडियो भटकता रहा। एक दिन मदनमोहनजी स्टुडियो में मोहम्मद रफी का गाना 'तुम्हारी जुल्फ के साये में शाम कर लूंगा।' रिकार्ड कर रहे थे तो उन्होंने मुझसे पूछा कैसा लगा। मैंने कहा – आप तो भगवान का अवतार हो। तब उन्होंने कहा – कल 7 बजे मेरे घर आ जाना और इस बार 5 मिनिट लेट मत होना। मैं दूसरे दिन उनके घर 5 मिनिट पहले पहुँच गया। वहाँ 2–4 लोग और भी बैठै थे। उन्होंने कहा कि ये उज्जैन से आए हैं और संगीत के बड़े शौकीन हैं, तब उन लोगों ने कहा कि तुम कुछ सुनाओ। वहाँ हारमोनियम रखा था, मैं चकित रह गया, इतनी जल्दी में क्या सुनाऊँ। उन्होंने कहा कि रफी साहब ने क्या खूब गाया है, ऐसा कुछ सुनाओ। मैंने कहा कि रफी साहब, कहाँ आप, और कहाँ मैं छोटा–सा आदमी फिर भी आप मुझे 2–3 मिनट दीजिए। उन्होंने कहा – आधा घण्टा लो। फिर मैंने बजाया 'तुम्हारी जुल्फ के साये में शाम कर लूंगा।' इसी गाने के भावों को अपने शब्दों में बांधा और उसकी धुन बना कर उन्हें सुनाया – 'छांव में य़ रोशनी आँचल क आने दो मुझे, जिन्दगी कुछ और भी है भूल जाने दो मुझे।' उन्होंने पूछा – यह अभी हाल ही में बनाया ? मैंने कहा – हाँ। फिर उन्होंने कहा – क्या बात है प्यारे, मजा आ गया। उन्होंने मुझसे पूछा कि हमसे क्या चाहते हो। मैंने कहा मैं बस यही चाहता हूँ कि मैं जो आप लोगों को सुनता हूँ, वह मुझे समझ आए और मैं सीख सकूँ। फिर मैं उनके साथ 7 वर्ष तक रहा और पाश्चात्य संगीत मैंने वहीं पर सीखा। मैं आकाशवाणी, इन्दौर से 1970 से गाने लगा था। मुझे अनुभव था कि कैसे रिकार्डिंग होती है। बम्बई में सीखा अनुभव मेरे काम आने लगा।

मेरे एक और गुरु भाईलाल बारोट थे। वे आकाशवाणी, इन्दौर में सन् 1970 में म्युजिक डायरेक्टर थे। हुआ यूँ कि भगवानलाल नाम का मेरा एक दोस्त था उज्जैन में, वह इन्दौर चला गया और 2–4 साल में करोड़पति बन गया। एक दिन

वह मेरे घर आया और मुझसे कहा – मेरे दोस्त के बेटे की शादी है और वहाँ तुझे गाना–बजाना है। हम इन्दौर पहुँचे। दो गाने वाली और कुछ साजिंदे थे, प्रोग्राम चल रहा था। भगवानलाल ने उन्हें रोककर कहा कि अब मेरा दोस्त गाएगा। उस्ताद तुम तबला बजाओ और हारमोनियम मेरे दोस्त को दो। वहीं पर भाईलाल बारोट से मेरी पहली मुलाकात हुई। वे मेरी गायकी को बड़े बारीकी से सुन रहे थे। उन्होंने मुझसे पूछा – कहाँ रहते हो और क्या करते हो ? मैंने कहा उज्जैन में रहता हूँ और विनोद मिल में काम करता हूँ। दूसरे दिन जब मैं मिल में काम कर रहा था तब विनोद मिल के मालिक का चपरासी मुझे बुलाने आया। मैं वहाँ गया तो भाईलाल बारोट बैठे थे। राजकुमुद हम दोनों को अपने कमरे में ले गए। भाईलालजी ने कहा कि मैंने कल तुम्हारा गाना सुना, तुम बड़ा अच्छा गाते हो। उन्होंने एक फार्म मेरे आगे कर दिया और कहा कि इस पर साईन कर दो। इन्दौर आकाशवाणी के ऑडिशन का फार्म है। मैं वहाँ का म्युजिक डायरेक्टर हूँ। अगर तुम्हारा चयन हो गया तो तुम्हें इन्दौर, आकाशवाणी में गाने का अवसर मिलेगा और मुझे विश्वास है कि तुम्हारा चयन हो ही जाएगा। मैंने उनसे कहा कि आप जहाँ चाहोगे वहाँ साईन कर दूँगा। मगर मेरी एक शर्त है कि आप मुझे गाना सिखाएँगे। मैंने इंदौर जाना शुरू कर दिया और मैं दो साल तक वहाँ जाता रहा। शनिवार व रविवार को वहाँ सीखता रहा। वे आकाशवाणी की रिकार्डिंग मुझे सिखाते थे, गाना सिखाते थे और कई बार मुझे होटल में ठहराते और खिलाते–पिलाते थे। एक दिन उन्होंने पूरे स्टाफ को बुला लिया और कहा कि तुम सब देखो और तय करो कि इसे गाना आता है या नहीं। पहले मैंने भजन गाया फिर गजल सुनाई। उन्होंने कहा कि अब मैं तुम्हारी रिकाडिंग करूंगा और इसका म्युजिक भी तुम्हे ही बनाना है। मेरे ना करने का सवाल ही पैदा नहीं होता था, पर फिर भी मैं घबरा रहा था और मैंने गजल सुनाई 'न हरम में सुक् मिलता हैं, न बुतखाने में, चैन मिलता है तो साकी तेरे मयखाने में।' बहुत सफल रिकाडिंग हुई और जब मैंने सुनी तो मेरी आँखों में आसू आ गए थे। इस सफलता का श्रेय भाईलाल बारोट का ही था। भाईलाल बारोट से मैने रिकार्डिंग सीखी, शोभा गुट् से शास्त्रीय और उपशास्त्रीय संगीत सीखा। ब.

वा. कारंत जी ने एक फिल्म बनाई– 'औरत भली रामकली', उसका संगीत उन्होंने मुझसे करवाया था। दिल्ली में प्लाजा के पास हम रिकार्डिंग करने गए। वहाँ मुझे रिर्कोडिस्ट ने कहा कि आप मुझे गाने दे दें। मैं उनका नोटेशन सुनकर बना लेता हूँ और उसको रिकार्ड कर लेता हूँ, फिर हम उसमें रिदम डाल देंगे तो इस तरह अलग–अलग रिटेक पर रिकार्डिंग का सिस्टम मैंने पहली बार देखा था और सीखा था। बम्बई, दिल्ली और इन्दौर के स्टुडियों में वेस्टर्न, सेमी क्लासीकल और क्लासीकल पद्धति की रिकार्डिंग की शैली मैंने सीखो। उज्जैन में मस्तबाबा गुरु का एक प्राचीन अखाड़ा था, वे किसी जमाने के बड़े बैरागी हुए हैं, उनके नाम की धुनी जलती रहती थी। उनका एक शिष्य था, जिसका नाम नारायण था, जो बहुत शराब पीता था, हम उन्हें मामा कहते थे। एक दिन मैं अखाड़े गया तो नारायण मामा ने कहा कि पहले यहाँ अखाड़े में हर शनिवार को भजन होते थे पर सब लड़के अब लफंगे हो गए, कोई नहीं आता है, तो तुम ही आ जाओ। मैंने कहा कि आज ही आ जाता हूँ। उसी शाम मैं वहाँ गया। 8–10 बुजुर्ग लोग 70–80 साल की आयु के वहाँ पहुँचे, धुनी लगाई गई। फिर एक बुजुर्ग कुछ पकड़कर लाए, मैंने देखा वह बिच्छू था। उन्होंने उसका डंक निकाला और उसे गांजे में मल कर पी गए। उसके बाद उन्होंने गाना शुरू किया। जब मैंने उन्हें सुना तो मुझे लगा कि ये कितना अद्‌भुत गा रहे हैं। मैं वहाँ 4–6 महीने गया और उनसे सीखता रहा। मै उन गानों में निपुर्ण हो गया। इस प्रकार मेरी निर्गुण संगीत की पद्धति विकसित हो गई। मैंने कहीं से विधिवत शिक्षा नहीं ली लेकिन वाघ साहब के कारण मैं उज्जैन के संगीत महाविद्यालय जाता रहा और हर हफ्ते होने वाले आयोजन में संगत करता रहा। एक बार क्लास में गया तो वहाँ लड़कियाँ तान ले रही थीं। मैंने बहुत कोशिश की पर मैं तान नहीं ले पाया। मैं नजर बाग मैं बैठकर घंटो सोचता रहा की मुझसे तान क्यों नहीं लग रही थी और यह क्रम लगभग 8 दिन तक चलता रहा। एक दिन वाघ साहब घर पर आए, मेरे पिताजी से शिकायत की, मुझे डांटा और पूछा 8 दिन से कहाँ गया था। मैंने कहा कि मैं क्लास में गया था तो वहाँ लडकियाँ तान ले रही थी पर मैं नहीं ले सका। उन्होंने पूछा कि कुछ समझ आया। तब मैंने कहा कि हाँ,

थोड़ा आया है। उन्होंने कहा कि बता क्या समझ आया। तब मैंने उन्हें एक कागज पर तान का नक्शा बनाकर बता दिया। मैंने उतार–चढ़ाव, अवरोह का नक्शा बनाकर बता दिया तो वे बहुत खुश हुए और उन्होंने कहाँ अब तू रोज मेरे घर आ। मैं 5 साल तक उनके घर गया और उन्होंने मुझे सिखाया। मैंने नाथपंथी गीत सीखे और बाद में नाथपंथी 'माच' भी लिखे हैं। उज्जैन में ऋणमुक्तेश्वर मंदिर है जहाँ रात में आज भी कोई नहीं जाता है। एक बार मैं डरते–डरते गया। वहाँ पर भजन की आवाजें आ रही थीं, वहाँ बैठे लोगों ने मुझे बुला लिया, उनके साथ बैठ गया। मैं वहाँ रोज जाने लगा। मैंने उनसे 50–60 नाथपंथी गीत सीखे। फिर मैंने भतृहरी, गोपीचन्द, रूपकुंअर, कंचन का मन, जगमोहन माच लिखे। मैंने संस्कृत नाटक, हास्य, चूड़ामणी का नाट्य रूपान्तरण किया था। सन् 1986 में कारन्त जी ने मुझे भारत भवन बुलाया और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के विद्यार्थियों को मेरे हवाले कर दिया। विद्यार्थी बहुत उदण्ड प्रवृति के थे। मैंने कारन्त जी को बताया। उन्होंने कहा इन्हें किसी भी हाल में तुम्हें सिखाना ही है। मैंने 2 किलो के घुघरू उनके पैरों में बँधवा दिए और अभ्यास शुरू करवा दिया। उन विद्यार्थियों ने मुझसे कहा कि गुरुजी कुछ भी करा लो पर ये घुंघरू छुडवा दो, हमारे पैरों में खून आने लगा है। मैंने उनके साथ गोपीचंद माच किया। जिसकी उन्होंने बहुत ही सुन्दर प्रस्तुति की। यह वह जमाना था, जब मैं नाथपंथियों पर काम कर रहा था और मेरे मन में धीरे–धीरे वैराग्य आने लगा। मैं बदहवास सा, मन्दिर के पास शमशान में बैठा रहता। यह सिलसिला दो साल तक चलता रहा। इसके बाद मैंने गोपीचन्द, भतृहरी, रूपकुंवर, कंचनकाम माच लिखे। मैंने कई तरह के योग सीखे और किए भी, जैसे ध्यान योग, हठयोग आदि। एक बार महान संगीतकार प्रेमलता शर्मा बनारस से कालिदास अकादमी में आईं। विक्रमोर्वशीय नाटक में संगीत का संयोजन होना था। एक दृश्य में उन्होंने मुझसे कहा कि कुकुर राग पर एक दोहा बनाकर बताइये। मैंने कहा कि आप उदाहरण दे दीजिए तो उन्होंने मुझे अगले दिन बिलावल में ध्रुवा गाकर सुनाया। मैंने उनसे कहा कि यह तो बिलावल है और पं. औंकारनाथ ठाकुर का बनाया हुआ है। कालिदास ने इसमें ककुर राग का वर्णन किया है। उनको शायद

ठीक नहीं लगा और वह चली गई। फिर मैंने इस नाटक में वर्णित राग पर आधारित ध्रुवा गाया, डॉ. कमलेश त्रिपाठी इतने प्रसन्न हुए कि आज भी मेरी ध्रुवाओं को गा–गाकर उदाहरण देते हैं सूफी संतो में, साधुओं में, बाबाओं में, नाथ पंथियों में मेरी बड़ी आस्था है। शाजापुर में वारसी बाबा का मजार है, वहाँ से मुझे बुलावा आया और मैंने उनका कलाम, उनकी दरगाह पर कव्वाली के रूप में पेश किया। मैंने अमीर खुसरो, बुल्लेशाह, लालन फकीर जैसे सूफी संतो के कलाम भी खूब गाए हैं। आभा परमार के निर्देशन में मुझ पर केन्द्रित लघुफिल्म का निर्माण भी किया गया है।

तलाश ए हक फिल्म का निर्माण

नागपुर वाले बोहरा समाज के लिए मैंने एक डाक्यूमेंट्री फिल्म बनाई थी, जिसके लिए मुझे डॉ. मुमताज अली की पत्नी मम्तु बहन ने प्रोत्साहित किया था। मम्तु बहन एक बहुत ही शरीफ, नेक और सबकी मदद करने वाली महिला हैं। उन्होंने बोहरा समाज के यमन से नागपुर तक आने के इतिहास के बारे में मुझे बताया। फिर वेशभूषा के लिये मैंने गय्युर को बुलाया और बाकी काम के लिये राजेन्द्र अवस्थी को बुलाया और एक हफ्ते की ट्रेनिंग रखी। फिल्म में शायरी आती है – 'हैं कोई मुरशिद मोला, घर में खुदा है बताएगा/बावन हुरूफ की माला बताकर धर्म भेद मिटाएगा।' उसमें तुकाराम सन्त का रोल भी था जो हमने डॉ. मुमताज अली को दिया था। इसकी शुटिंग, कालियादामहल, रामजनार्दन मन्दिर और उज्जैन की अन्य जगह की। फिल्म का नाम था – 'तलाश ए हक' फिल्म में बताया गया है कि बोहरा समाज यमन से हिन्दुस्तान कैसे आया और फिर नागपुर वालों की शाखा कैसे बनी। फिल्म बन गई तब नागपुर से मलक सहाब तशरीफ लाए और एक बड़ी स्क्रीन पर इस फिल्म का उज्जैन में पूरे समाज के सामने प्रदर्शन किया गया, बहुत प्रशंसा भी प्राप्त हुई।

साथी रंग निर्देशक

पं. ओमप्रकाश शर्मा ने बताया है कि मैंने अनेक प्रख्यात नाट्यनिर्देशकों के साथ संगीत निर्देशन किया है। वणीसंहारम् (संस्कृत), खेलगुरु का हास्य चड़ामणी में बंसी कौल के निर्देशन में मैंने संगीत दिया था। एम. के. रना के साथ इन्ना की आवाज, अविमारक और हास्य चूड़ामणी में काम किया। विक्रमोर्वशीय नाटक डॉ. कमलेशदत्त त्रिपाठी और प्रभातकुमार भट्टाचार्य के साथ किया। राजेन्द्र अवस्थी के साथ भास के 13 नाटकों में संगीत दिया। धीरेन्द्र कुमार के साथ शाकुन्तलम् और विक्रमोर्वशीय किया। श्रीनिवास रथ और कमलेशदत्त त्रिपाठी के साथ भी यह दोनों नाटक किए। एक मालवी नाटक धीरेन्द्र कुमार के साथ 'सीता ओलखी' भी किया। कारन्त जी ने मुझसे कहा कि बैरी जान के निर्देशन में दो कश्तियों का सवार नाटक है, इसका संगीत आपको सम्भालना है। आमोद भट्ट हारमोनियम बजाते थे, वो आए नहीं थे। मैंने सुरेश भारद्वाज से कहा कि होशंगाबाद के आखरी शो में मैं नहीं रहूँगा, तुम मुझसे सीख लो और यात्रा के दौरान ही उन्होंने कामचलाऊ हारमोनियम सीख लिया। होशंगाबाद का पूरा शो उन्होंने सम्भाला और मैंने सामने बैठ कर उसे देखा। एक बार भारत भवन का, 7 दिन का फेस्टीवल, पृथ्वी थियेटर, बम्बई में रखा गया था। कारन्त जी ने मुझसे कहा कि पृथ्वी थियेटर में एक दिन माच का कार्यक्रम भी रखा गया है। मैं माच के मंचन वाले दिन अपनी मंडली को लेकर पहुँच गया। उसी दिन माच के मंचन से पहले आलोपी वर्मा द्वारा निर्देशित हरिशंकर परसाई की कहानी 'एक लड़की पांच दीवाने' का मंचन था। उनके शो के 10 मिनट बाद ही 'माच' का मंचन था। उन्होंन अपना सेट लगाया और झिझकते हुए मुझसे कहा कि दादा मैंने अपना सेट फिक्स कर दिया है। मैंने कहा कि कोई बात नहीं, उसी सेट और लाईट में माच कर दूँगा और हमने ऐसा ही किया तो सब बहुत खुश हुए। एक बार के.एन. पण्णिकर ने मुझसे कहा कि नाटक के लिए कोई गणेश वंदना दे दीजिये। मैंने अपने दादा जी की लिखी 'मनावा चिंतामन गणपति' दे दी। उन्होंने इसमें दक्षिण भारत की धुन डालकर अपने अनुरूप बना लिया। यह बहुत सफल प्रयोग रहा। इस प्रकार मैंने एम.के. रैना, बंसो कौल, श्रीनिवास रथ, डॉ. प्रभातकुमार भट्टाचार्य, रवि शर्मा, बरीजॉन, धीरेन्द्र परमार, राजेन्द्र अवस्थी, हफीज खान, सतीश

दवे, भास्कर चन्द्राकर, लोकेन्द्र त्रिवेदी, संजीव दीक्षित, आभा परमार आदि अनेक नाट्य निर्देशकों के साथ संगीत निर्देशन किया है।

एम.के. रैना के साथ 3 नाटक किए थे – इन्ना को आवाज, अविमारक, सपना में रानो। मैंने कारन्त जी के कहने पर हरिशंकर परसाई द्वारा रचित 'भोलाराम का जीव' को दो दिन में माच–शैली में लिख कर तैयार किया था। इस नाटक को हमने दिल्ली में राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के छात्रों के साथ डायरेक्ट किया था। मैंने और कारन्त जी ने मिलकर सूरजकरण, चन्द्रकला और मेरा लिखा राजा दयालु नाटक भी किए थे। भारत भवन में भी मैंने कारन्त जी के साथ संगीत संयोजन किया था। हफीज खान के साथ वीणा वासवदत्ता और दुलारी बाई नाटक किए। 'और यात्रा सफल हुई' और 'मृत्यु भोज' के लिए गीत तैयार किए, जिनका निर्देशन डॉ. भास्कर चन्दाकर और मैंने मिलकर किया था।

बृजमोहन शाह के साथ मैंने पारसी थियेटर पर आधारित आगा हश्र काश्मीरी द्वारा लिखित नाटक मशरिकी हूर किया था, जिसमें उर्दू के संवाद थ। एक और उर्दू नाटक मोहम्मद हसन द्वारा ईरान की पृष्ठभूमि पर लिखा 'जहाक', हफीज़ खान के साथ किया था, जिसमें मैंने अरब और मिश्र को संगीत की धुनों का प्रयोग किया था। दुष्यन्त कुमार की गज़लों की धुने मैंने तैयार की थीं और थियेटर, उज्जैन ने राजेन्द्र गौतम के निर्देशन में उनका मंचन किया था। पू. मौनी बाबा द्वारा स्थापित अखिल भारतीय मानस मंच द्वारा 1986–87 में क्षीरसागर उज्जैन में 10 दिवसीय रामलीला में मैंने संगीत निर्देशन किया, नाट्य निर्देशन हाफिज़ खान ने किया था। रामलीला के संगीत को अर्जुनसिंह तथा सुनीलदत्त आदि ने बहुत सराहा था। पं. ओमप्रकाश शर्मा कहते हैं कि उम्र के इस पड़ाव पर पहले जैसी सामर्थ्य तो नहीं रह गई है, फिर भी संगीत का साथ छूटा नहीं है। सच तो यह है कि संगीत ही मेरा जीवन है।